

## द्यावान डाक्टर - सुधा मूर्ती

बात 1942 की है। उस जमाने में एमबीबीएस से पहले एलएमपी (लाइसेंस्ड मेडिकल प्रैक्टिशनर) की डिग्री हासिल करनी होती थी। तब मेरे पिता डा आर एच कुलकर्णी 22 वर्ष के थे। उनकी पोस्टिंग महाराष्ट्र-कर्नाटक की सीमा पर स्थित चंदगढ़ गांव की डिस्पेंसरी में हुई। वहां कुछ ज्यादा काम नहीं था - कभी-कभार बुखार या इंजेक्शन आदि के लिए कोई आ जाता था। पिताजी वहां बोर हो रहे थे।

फिर जुलाई का महीना आया। एक रात को तेज बारिश होने लगी। अचानक उनके घर के दरवाजे पर किसी ने जोर से दस्तक दी। बाहर घुप्प अंधेरे में आठ लठैत कंबल ओढ़े खड़े थे। दो कारें भी खड़ी थीं। उन्होंने पिताजी को तुरंत अपने साज-सामान के साथ चलने का हुक्म दिया। तेज बारिश में डेढ़ घंटे बाद कारें एक घर के पास आकर रुकीं। चारों तरफ स्याह अंधेरा। लठैतों ने पिताजी को घर के अंदर धकेला और वहां एक 17 वर्षीय लड़की की डिलिवरी करने का आदेश दिया। फिर लठैतों ने बाहर से घर को बंद कर दिया। अंदर पूरी तरह अंधेरा था। बस एक चिमनी जल रही थी। लड़की के पास एक बूढ़ी औरत बैठी थी जो बहरी थी।

पिताजी युवा थे। उन्हें स्त्री प्रसव और डिलिवरी का कोई पूर्व अनुभव नहीं था। वो काफी घबराए हुए थे। उनके मुकाबले लड़की ज्यादा आश्वस्त लग रही थी।

उसने कहा, 'डाक्टर मैं जीना नहीं चाहती। मेरे पिता एक बड़े जमांदार हैं। उनकी 500 एकड़ की खेती है। लड़की होने के कारण उन्होंने मुझे कभी स्कूल नहीं भेजा। मेरी पढ़ाई के लिए घर में ही एक शिक्षक को रखा। मालूम नहीं क्यों मुझे उससे प्रेम हो गया और मैं गर्भवती हो गई। शिक्षक अपनी जान बचाने के लिए वहां से रफूचकर हो गया। गर्भ गिराने के सभी देसी तरीके अपनाए गए जो नाकामयाब रहे। अंत में परिवार ने इज्जत बचाने के लिए मुझे इस सुनसान घर में एक बूढ़ी औरत के साथ रखा। डाक्टर साब आप डिलिवरी नहीं करें। आप बाहर लठैतों से कहें कि बड़े आपरेशन के लिए मुझे बेलगाम लेकर जाना होगा। इस बीच मैं चल बसूंगी - और मैं बस मरना चाहती हूँ।'

मेरे पिता ने कहा, 'डाक्टर का काम मरीज की जान बचाना होता है, न कि लेना। मैं अपनी भरपूर कोशिश करूँगा।'

फिर मेडिकल पढ़ाई का जो कुछ भी उन्हें याद आया उसका उन्होंने उपयोग किया। वहां चावल के एक बोरे पर चादर डाल एक जुगाड़ पलंग बनाकर उन्होंने उस युवती की डिलिवरी की। शायद विषम परिस्थितियों में साधारण लोगों में भी विलक्षण हिम्मत आ जाती है।

युवती ने एक बच्ची को जन्म दिया। जन्म के बाद नवजात बच्चा कुछ आवाज करता है, परन्तु इस बच्ची ने वैसा कुछ भी नहीं किया।

युवती को जब बच्ची के जन्म का पता चला तो उसने डाक्टर से बहुत आरजू-मिन्नत की, 'अगर लड़का होता तो अच्छा होता। इस बच्ची को जिंदा करने की कोई कोशिश न करें। नहीं तो बड़ी होकर इस लड़की का भी वही हश्र होगा जो मेरा हुआ है।'

पर डा कुलकर्णी ने उसकी कोई दलील नहीं सुनी। डाक्टर की हैसियत से उनसे जो कुछ बन पाया उन्होंने किया। उन्होंने बच्ची को उल्टा लटकाकर उसे पीछे से जोर से थपथपाया। तो बच्ची कुछ रोई। यह उसके जिंदा होने का एक शुभ संकेत था।

जब डा कुलकर्णी घर के बाहर निकले तो उन लठैतों ने उन्हें बतौर फीस 100 रुपए की बख्शीश दी। 1942 में यह बहुत बड़ी रकम थी। शायद आज के दस हजार रुपए जितनी। पैसे मिलने के बाद पिताजी ने उस युवती की मदद करने की ठानी। अपने छूटे औजार को लाने का बहाना बनाकर वो दुबारा घर के अंदर रह गए।

उन्होंने उस युवती को वो सौ रुपए दिए और उससे कहा, 'देखो तुम पुणे जाओ। वहां एक नर्सिंग कालेज है। वहां मेरा मित्र आपटे एक क्लर्क है। उससे जाकर मिलना और कहना तुम्हें आरएच ने भेजा है। वो तुम्हारी जरूर मदद करेगा।'

फिर पिताजी इस घटना को पूरी तरह भूल गए। कुछ सालों बाद उनकी शादी हुई। मेरी मां एक स्कूल टीचर थीं। मां के बचाए हुए पैसों से ही पिताजी ने बम्बई जाकर एमबीबीएस किया। और 42 साल की उम्र में उन्होंने गाइनिकॉलोजी में एमएस किया। अक्सर लोग पिताजी का मजाक उड़ाते, 'आपकी बेटियां तो अब बड़ी हो गई हैं, फिर अब आप और क्यों पढ़ रहे हैं?'

पर पिताजी को पढ़ने की बेहद लगन थी। अपने पहले मरीज से ही उन्हें स्त्री विशेषज्ञ बनने की प्रेरणा मिली थी। उन्हें लगता था कि स्त्री विशेषज्ञ बनकर वो शायद अन्य युवतियों की भी मदद कर पाएं।

रिटार्यमेंट के बाद भी पिताजी मेडिकल कान्फ्रेंसों में जाते रहते और नया ज्ञान अर्जित करते। एक बार वो औरंगाबाद में स्त्री विशेषज्ञों की एक कान्फ्रेंस में गए। वहां पर एक युवा महिला डाक्टर चंद्रा ने बहुत सुन्दर भाषण दिया जिसे सुनकर पिताजी बेहद प्रभावित हुए। पूछने पर डाक्टर चंद्रा ने बताया कि वो कई गांवों में महिलाओं के स्वास्थ्य पर काम करती हैं और इसीलिए उन्हें इसका गहरा ज्ञान है।

इसी बीच पिताजी के एक पुराने मित्र आए और उन्होंने उनसे कहा, 'डा आरएच आप कैसे हैं?'

डा आरएच का नाम सुनते ही डाक्टर चंद्रा लपक कर पिताजी के पास आई और उन्होंने पूछा, 'क्या आपने कभी चंदगढ़ की डिस्पेंसरी में काम किया था?'

'हां, हां, बहुत साल पहले,' पिताजी ने उत्तर दिया।

‘सर, फिर तो आपको मेरे घर चलना ही होगा!’ डाक्टर चंद्रा ने कहा।

‘बेटा मैं तुम्हें पहली बार मिला हूं। तुम्हें अच्छी तरह जानता भी नहीं, फिर मैं कैसे तुम्हारे घर जा सकता हूं?’ पिताजी ने कहा।

‘नहीं सर, आपको चलना ही होगा। इससे मेरी मां को बेहद खुशी मिलेगी।’

घर पहुंचने पर एक खिचड़ी बालों वाली अधेड़ उम्र की महिला बाहर निकली और उसने सबसे पहले पिताजी के पैर छुए।

महिला ने कहा, ‘सर, मैं आपकी वो पहली मरीज हूं जिसकी आपने 1942 में डिलिवरी की थी। आप के बताए अनुसार मैं घर छोड़कर पुणे गई और वहां आप्टे क्लर्क से मिली। तब मैं दसवीं पास भी नहीं थी फिर भी उन्होंने मुझे नर्सिंग कालेज में दाखिला दिया। फिर मैं पुणे में स्टाफ नर्स बनी। घर वालों ने जब पुणे में मेरा पीछा किया तो फिर मैं बम्बई चली गई। जब मैंने पुलिस में रिपोर्ट करने की धमकी दी तब जाकर मेरे घरवाले चुप हुए। मैंने अपनी लड़की को खूब पढ़ाया और उसे डाक्टर बनने के लिए प्रेरित किया। मैंने उससे कहा कि तुम स्त्री विशेषज्ञ बनो जिससे कि तुम भी डाक्टर आरएच जैसी अन्य युवतियों की मदद कर सको।’

‘कहां है आपकी बेटी?’ पिताजी ने उत्सुकतावश पूछा।

‘यह चंद्रा ही तो मेरी बेटी है। मरने से पहले मैं एक बार अवश्य आपके दर्शन करना चाहती थी। मैंने आपको खोजने का बहुत प्रयास किए पर असफल रही। मैंने आप्टे जी से भी सम्पर्क किया पर तब तक उनका देहांत हो चुका था। आपका पहला नाम रामचंद्रा है। उसके ऊपर ही मैंने अपनी बेटी का नाम चंद्रा रखा। चंद्रा का एक अस्पताल है जिसका नाम है आरएच नर्सिंग होम। वो अगर तीन मरीजों से फीस लेती है तो दो मरीजों को निशुक्ल देखती है।’

(सुधा मूर्ति इन्फोसिस फाउंडेशन की चेयरपर्सन हैं। 16 अगस्त 2013 को क्रिस्चियन मेडिकल कॉलेज, वेल्लोर के भाषण में उन्होंने यह कहानी सुनाई।)

प्रस्तुतिः अरविन्द गुप्ता